इकाई 15 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : रामधारी सिंह 'दिनकर'

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

15.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

15.4 उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रामधारी सिंह 'दिनकर' की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;
- 'दिनकर' की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- इन कविताओं के माध्यम से 'दिनकर' की काव्यात्मक विशिष्टताओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- 'दिनकर' की काव्य–भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगी/सकेंगे;
- 'दिनकर' की शब्द–योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

दिनकर जी का जन्म 23 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम रवि सिंह तथा माता का नाम मनरूप देवी था। दिनकर की प्राथमिक शिक्षा गाँव से पूरी हुई। वे हाई स्कूल की परीक्षा मोकामाघाट से उतीर्ण हुए। उसके बाद वे पटना चले आए और पटना कॉलेज से इतिहास विषय में बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा पास की। उन्होंने कई तरह की सरकारी और प्राइवेट नौकरी की। वे कुलपति के पद पर भी रहे और सांसद भी।

दिनकर में राजनीतिक चेतना प्रखर थी जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में खूब हुई है। उनपर गाँधीवाद का गहरा प्रभाव पड़ा, हालाँकि वे गाँधीवाद के प्रति असहमति दर्ज करनेवाली कविताएँ भी एक दौर में लिख चुके थे। वे जवाहरलाल नेहरू के निकट थे, मगर 'परशुराम की प्रतीक्षा' की कविताओं में उनके शासनकाल की आलोचना भी दिखाई पड़ती है। 'संस्कृति के चार अध्याय' के लिए 'साहित्य अकादमी' और 'उर्वशी के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से वे सम्मानित हुए।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की मृत्यु 24 अप्रैल,1974 में हुई थी।

काव्य कृतियाँ

रेणुका (1935), हुंकार (1938), रसवन्ती (1939), द्वंद्वगीत (1940), कुरूक्षेत्र (1946), सामधेनी (1947), बापू (1947), इतिहास के आँसू (1951), रश्मिरथी (1952), दिल्ली (1954), नीम के पत्ते (1954), नील कुसुम (1955), चक्रवाल (1956), सीपी और शंख (1957), उर्वशी (1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), हारे को हरिनाम (1970), रश्मिलोक (1974)

गद्य कृतियाँ

मिट्टी की ओर 1946, अर्धनारीश्वर 1952, रेती के फूल 1954, संस्कृति के चार अध्याय 1956, पन्त–प्रसाद और मैथिलीशरण 1958, वेणुवन 1958, धर्म, नैतिकता और विज्ञान 1969, लोकदेव नेहरू 1965, शुद्ध कविता की खोज 1966, साहित्य–मुखी 1968, राष्ट्रभाषा आंदोलन और गांधीजी 1968, हे राम! 1968, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ 1970, भारतीय एकता 1971, मेरी यात्राएँ 1971, दिनकर की डायरी 1973, चेतना की शिला 1973।

15.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

एक

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है!
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता, न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते–मरतेय
और लाखों बार तुझ–से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न? है वह बुलबुला जल काय
आज उठता और कल फिर फूट जाता हैय
किन्तु, फिर भी धन्य ठहरा आदमी ही तो?
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किन्तु, मेरी रागिनी बोली,
देख फिर से, चाँद! मुझको जानता है तू?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं? है यही पानी?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,

आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ,
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु–पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
वाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
'रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिये, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।'

'सामधेनी' (1946)

सन्दर्भ और प्रसंग

चाँद और कवि की बातचीत के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गयी है कि मनुष्य अब साधन–सम्पन्न हो गया है। विज्ञान की ताकत ने उसके इरादों को खतरनाक बना दिया है।

व्याख्या

'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' शीर्षक कविता में रामधारी सिंह दिनकर ने आधुनिक युग के मनुष्य की वैज्ञानिक क्षमताओं के दुरूपयोग पर विचार किया है। विज्ञान के विकास ने मनुष्य को तरह–तरह की तकनीक उपलब्ध कराई है। इसने मनुष्य के जीवन को सुगम–सुंदर बनाया है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि इसने विध्वंस की तकनीक को भी आविष्कृत किया है। पहले की तुलना में आज के युद्धों में ज्यादा विनाश होता है।

चाँद और कवि की बातचीत के माध्यम से इन परिस्थितियों को रोचक तरीके से इस कविता में प्रस्तुत किया गया है। कल्पना के सहारे इस बात–चीत का ताना–बाना बुना गया है। 'सामधेनी' (1947) काव्य–संग्रह में संगृहीत इस कविता का लेखन वर्ष 1946 है। 'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन भी 1946 में ही हुआ था। यह दौर दूसरे विश्वयुद्ध (1939–1945) के वातावरण से घिरा था। दिनकर

कठिन शब्द

मनु – मनुष्य के आदिम पूर्वज, **वैदिक**–पौराणिक मान्यता के अनुसार मनु से ही मानव का जन्म हुआ है, **मनु–पुत्र**–मानव, मनुष्य

'कुरुक्षेत्र' में इस विषय पर विस्तार से विचार कर रहे थे। कई बातों के साथ दिनकर यह भी बता रहे थे कि विज्ञान के आविष्कारों ने युद्ध की विभीषिका को बढ़ाया है। अतः विज्ञान को मनुष्य–विरोधी होने से बचाने की जरूरत है। आज की मानव–सभ्यता औद्योगिक क्रांति के दौर को पार कर शक्ति–सम्पन्न हो गयी है। इसकी तुलना में पहले का मानव चाँद–सितारों के बारे में कल्पना के सहारे सोचता था।

दिनकर कहते हैं कि रात में आकाश में चाँद निकला हुआ था। वह मुझसे बातें करने लगा कि आदमी विचित्र किस्म का जीव है। उसकी विचित्रता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अपनी तरक्की के लिए न जाने क्या–क्या करता है? इस प्रयास में वह अनायास अपने लिए उलझनें पैदा करता जाता है। तरक्की की इच्छा के क्रम में जब उसकी उलझनें बहुत बढ़ जाती हैं, तब वह बेचैन रहने लगता है। उसकी नींद उड़ जाती है।

चाँद कवि को संबोधित करके कहता है कि क्या तू जानता है कि मैं कितना पुराना हूँ? मैं तुम्हारी मानव जाति से बहुत पहले से मौजूद हूँ। मुझे तुम्हारी उत्पत्ति और विकास का पूरा क्रम मालूम है। मैंने तुम्हारे आदिम पूर्वज मनु को जन्म लेते और मरते हुए देखा है। मतलब यह कि मानव जाति की उत्पत्ति मेरी आँखों के सामने की घटना है। मनुष्य विकसित होता गया और धीरे–धीरे उसमें संवेदनाएँ भी महत्त्वपूर्ण होती गयीं। भावनाओं के ज्वार में मनुष्य को मैंने तुम्हारी तरह कवि बनते भी देखा है। ऐसा मैंने लाखों बार देखा है। मुझे कई बार लगा कि तुम्हारी तरह जो लोग कवि होते हैं, वे प्रायः पागल होते हैं। उन पागलों को मैंने चाँदनी रातों में और भी उन्मादित होते देखा है। मुझे यही लगा कि ये कवि चाँदनी में बैठकर अपने सपनों को हकीकत में बदलने की कल्पना करते हैं, मगर यह सब मानसिक विक्षोभ से ज्यादा कुछ नहीं है। मनुष्य के सपने पानी के बुलबुले की तरह बनते और बिगड़ते हैं। लेकिन आदमी सपने देखना छोड़ता नहीं है। वह इन सपनों से ही खेलता रहता है और कवि के रूप में अपनी वाणी को कविता में ढाल देता है।

चाँद की इन बातों को सुनकर कवि ने कोई जवाब नहीं दिया। मगर कवि को ऐसा लगा कि उसके मन में बैठी हुई कविता ने अपनी शैली में जवाब दिया है। चाँद को सम्बोधित करते हुए कवि की रागिनी बोल उठी कि ऐ चाँद! तुम मुझे ठीक से नहीं जानते हो! आज का मनुष्य जिन सपनों को देखता है वे पानी के बुलबुले नहीं हैं। इनमें पानी भी है और आग भी! आज का कवि केवल सपनों में नहीं जीता है, बल्कि वह अपने सपनों को आग में गलाकर लोहे की तरह ढाल लेता है। लोहे से बनी उस नींव पर वह नए घर की फौलादी दीवार उठाता है। अब वह मनु की तरह आदिम स्थिति में नहीं है, बल्कि विकास करता हुआ बहुत आगे आ चुका है। वह मनु से मानव हो चुका है। अब उसकी कल्पना बोलने लगी है। उसकी बोलती हुई जीभ में धार आ गयी है। अब उसके पास केवल विचारों के ही बाण नहीं हैं, बल्कि उसके सपनों के हाथों में तलवार आ गयी है। कवि चाँद को आगाह करता है कि जाकर स्वर्ग के सम्राट से कह दो कि हम मनुष्य लगातार आगे बढ़ रहे हैं। नित नए सपने देखनेवाले इन मनुष्यों की नीयत ठीक नहीं है। ये आपके स्वर्ग पर धावा बोलना चाहते हैं। चाहे जैसे हो, इन्हें रोकिए!

काव्य सौष्ठव

- विज्ञान के विकास ने विध्वंस की भी क्षमता का विकास किया है।
- आज का मनुष्य केवल कल्पना करके ठहर नहीं जा रहा, बल्कि अपनी कल्पना के आलंबन चाँद पर कदम भी रख चुका है।
- मानव सभ्यता का यह बेलगाम विकास प्रकृति के लिए खतरनाक है।
- 23 मात्राओं की पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है।

विशेष

नया मनुष्य प्रकृति में विनाशकारी हस्तक्षेप भी कर रहा है।

दो

शक्ति और क्षमा

क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल
सबका लिया सहारा
पर नर–व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ, कब हारा?

क्षमाशील हो रिपु–समक्ष
तुम हुये विनत जितना ही
दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही।

अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है।

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो?

तीन दिवस तक पंथ माँगते
रघुपति सिन्धु–किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द

अनुनय के प्यारे–प्यारे।

उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।

सिन्धु देह धर 'त्राहि–त्राहि'
करता आ गिरा शरण में,
चरण पूज, दासता ग्रहण की
बँधा मूढ़ बन्धन में।

सच पूछो, तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि–वचन सम्पूज्य उसी का,
जिसमें शक्ति विजय की।

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।क

'कुरूक्षेत्र' से (1946)

कठिन शब्द

नर–व्याघ्र– जो मनुष्य होते हुए भी बाघ की तरह हिंसक प्रवृत्ति का हो, **सुयोधन**– दुर्योधन, **क्षमाशील**– माफ करने की प्रवृत्ति रखनेवाला, **रिपु–समक्ष**–दुश्मन के सामने, **विनत**–विनम्र, **पौरुष का आतंक** – अपने बल का प्रभाव, **भुजंग**– साँप, **गरल** – जहर, **नाद**– आवाज, **शर**– तीर, वाण, **त्राहि–त्राहि**–रक्षा की भीख माँगना, **दीप्ति**– चमक, **सन्धि–वचन सम्पूज्य**– समझौते की बात का सम्मान, **बल का दर्प**– शक्ति का आत्मविश्वास

सन्दर्भ और प्रसंग

'शक्ति और क्षमा' शीर्षक कविता 'कुरुक्षेत्र' (1946) के 'तृतीय सर्ग' से ली गयी है। 'कुरुक्षेत्र एक खंडकाव्य है। 'शक्ति और क्षमा' शीर्षक सम्पादकों के द्वारा दिया गया है। युद्ध पर विचार करने वाली यह पुस्तक महाभारत से प्रसंग लेकर अपनी बात कहती है। प्रस्तुत कविता में भीष्म और युद्धिष्ठिर के बीच बातचीत है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है, भीष्म पितामह शर–शय्या पर लेट कर सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। युद्धिष्ठिर उनका हाल–चाल पूछने उनके पास प्रतिदिन जाते हैं। पुरानी बातों पर दोनों अपने–अपने विचार रखते हैं। इस कविता में केवल भीष्म के कथन हैं।

व्याख्या

भीष्म पितामह युद्धिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि तुम अपने को युद्ध के लिए दोषी मत मानो! तुमने तो हर तरह से कोशिश की थी कि युद्ध न होने पाए। इसके लिए तुम दुर्योधन के आगे झुके भी थे। तुम समझौते को भी तैयार थे, मगर कौरव–पक्ष तुम्हारी बातों को सुनना कहाँ चाहता था! तुम्हारी विनम्रता को उन्होंने दुर्बलता समझा था! इसलिए तुम्हें ग्लानि करने की कोई जरूरत नहीं है।

भीष्म कहते हैं कि हे युद्धिष्ठिर! क्षमा, दया, तप, त्याग और मनोबल – जैसे सात्विक साधनों का तुमने उपयोग किया! इन सबके सहारे तुमने दुर्योधन के मन को बदलने का प्रयास किया, किन्तु यह बताओ कि दुर्योधन तुमसे कहीं भी और कभी भी मेल–जोल को तैयार हुआ? वह तो मनुष्य होते हुए भी बाघ की तरह हिंसक है।

क्षमाशील बनकर शत्रु के सामने तुम जितने ही विनम्र होते गए उन दुष्ट कौरवों ने तुम्हें उतना ही कायर समझा। वे तुम्हारी क्षमाशीलता का सम्मान न कर सके! देखो युद्धिष्ठिर, अत्याचार को लगातार सहते जाने का दुष्परिणाम यही निकलता है कि तुम बलवान होते हुए भी बलहीन समझ लिए जाते हो! तुम्हारी कोमलता को तुम्हारी कमजोरी मान लिया जाता है।

भीष्म अगली पंक्तियों में साँप का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि जिस साँप के पास जहर हो वह कहे कि मैंने क्षमा कर दिया, तो यह बात शोभती है। जिस साँप के पास न तो नुकीले दाँत हैं, न जहर है, जो विनम्र और सरल है – वह भला किसी को क्या माफी देगा? इसलिए माफी भी उसी की महत्त्वपूर्ण होती है, जिसके पास ताकत हो!

भीष्म फिर उदाहरण देते है कि राम तीन दिनों तक समुद्र से रास्ता माँगते रहे। वे समुद्र से प्रार्थना करते रहे कि लंका तक जाने का रास्ता मुझे दीजिए। वे निवेदन की सुंदर–सुंदर पंक्तियों के सहारे अपनी बात कहते रहे, मगर समुद्र पर कोई असर नहीं पड़ा। उसकी तरफ से कोई जवाब नहीं आया। अंततः राम का धैर्य जवाब दे गया और वे क्रोधित हो गए। मानो उनके पौरुष की आग उनके तीर के माध्यम से प्रकट हुई। विध्वंस की आशंका प्रकट होते ही समुद्र देह धारण करके राम के चरणों में आ गिरा। उसने अपनी रक्षा की भीख माँगी। उसने राम के चरणों की वंदना की और उनकी अधीनता स्वीकार करने की घोषणा की। वह जड़–बुद्धि समुद्र बल के आगे भयभीत हुआ और दास्ता के बंधन में बँध गया।

हे युद्धिष्ठिर! सच तो यही है कि ताकत होने पर ही विनम्रता शोभा देती है। तीर की ताकत में ही विनय की चमक बसती है। समझौते का प्रस्ताव तभी माना जाता है जब विजय की शक्ति भी आपके पास हो! सहनशीलता, क्षमा और दया को यह संसार तभी सम्मान देता है जब शक्ति की चमक उसके पीछे मौजूद होती है!

काव्य सौष्ठव

- युद्धोन्माद के माहौल में शक्तिहीनता काम नहीं आती है।
- युद्ध–प्रियता प्रतिपक्ष की विनम्रता का सम्मान नहीं करती है।
- शांति बनाए रखने के लिए शक्ति–संतुलन आवश्यक है।
- यह कविता अवांतर से यह भी सन्देश देती है कि युद्ध अंततः अच्छे परिणाम नहीं देता है।
- 28 मात्राओं की पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है। 16 और 12 मात्रा पर यति है। अंत में दीर्घ है।

विशेष

युद्ध के माहौल में वीरता आवश्यक होती है। ऐसे माहौल में शक्तिहीन को अपमानित होना पड़ता है। क्षमा की नीति भी तभी कारगर होती है, जब क्षमा करनेवाला शक्तिशाली हो।

तीन

हिमालय

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट् !
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!
मेरी जननी के हिम–किरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

युग–युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग–युग गर्वोन्नत, नित महानय
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान?

कैसी अखंड यह चिर–समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान?
तू महाशून्य में खोज रहा?
किस जटिल समस्या का निदान?
उलझन का कैसा विषम जाल?
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

ओ मौन तपस्या–लीन यती!
पल भर को तो कर दृगुन्मेष!
रे! ज्वालाओं से दग्ध विकल,
है तड़प रहा पद पर स्वदेश!

सुख–सिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा–यमुना की अमिय–धारय
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार।

जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति! तू ने की पुकार –
'पद–दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार।'

उस पुण्यभूमि पर आज तपी,
रे! आन पड़ा संकट करालय
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक् विविध व्याल।
मेरे नगपति! मेरे विशाल!
कितनी मणियाँ लुट गयीं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष!
तू ध्यान–मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

कितनी द्रुपद के बाल खुले,
कितनी कलियों का अंत हुआ?
कह ह्रदय खोल चित्तौर यहाँ
कितने दिन ज्वाल–वसंत हुआ?

पूछे, सिकताकण से हिमपति,
तेरा वह राजस्थान कहाँ?
वन–वन स्वतंत्रता–दीप लिए
फिरने वाला बलवान कहाँ?

तू पूछ, अवध से राम कहाँ?
वृंदा! बोलो, घनश्याम कहाँ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी,
तू पूछ, कहाँ इसने खोयीं
अपनी अनन्त निधियाँ सारी?

री कपिलवस्तु! कह बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ?

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ; लिच्छवी–शान कहाँ?
ओ री उदास गण्डकी! बता,
विद्यापति कवि के गान कहाँ?

तू तरुण देश से पूछ अरे!
गूँजा कैसा यह ध्वंस–राग?

अम्बुधि–अन्तस्तल–बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग?

प्राची के प्रांगण–बीच देख,
जल रहा स्वर्ण–युग–अग्नि ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग तपी!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

रे! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर!
पर, फिरा हमें गाण्डीव–गदा,
लौटा दे अर्जुन–भीम वीर।

कह दे शंकर से आज करें,
वे प्रलय–नृत्य फिर एक बारय
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर–हर–बम' का फिर महोच्चार।

ले अँगडाई उठ, हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैल–राट् हुंकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल,
नवयुग–शंख–ध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल!

(रचनाकाल – 1933, 'हुंकार' से (1938)

कठिन शब्द

नगपति– हिमालय, नग (पहाड़), **मेरे विशाल** – कवि अपने देश की विराटता के प्रतीक के रूप में हिमालय को सम्बोधित कर रहा है, **साकार**– विशालता और दिव्यता का मूर्तिमान रूप है हिमालय, **मेरी जननी**– मेरी भारतमाता, मेरी मातृभूमि, **हिम–किरीट**– भारतमाता के सिर पर बर्फ के मुकुट की तरह है हिमालय, **दिव्य भाल** – चमकते हुए ललाट की तरह है हिमालय, **अजेय**– जिसे जीता न जा सके, **निर्बन्ध**– बिना बंधन के, **मुक्त**– जो किसी बंधन में न हो, **निस्सीम व्योम**– सीमाहीन आकाश, **महिमा का वितान**– प्रभा–मंडल का आवरण, **चिर–समाधि** –लगातार ध्यान में रहना, **यतिवर**– संन्यासियों में श्रेष्ठ, **महाशून्य**– विराट आकाश, **तपस्या**–लीन, **यती** – साधना में डूबा हुआ संन्यासी, **दृगुन्मेष**– दृग खोलना, आँखें खोलना, **सुख–सिंधु** – सुख का प्रतीक विशाल सिंधु नदी, **पंचनद–पंजाब की पाँच नदियाँ**– सतलज, झेलम, चनाब, रावी और व्यास, **अमिय–धार**– अमृत की तरह की जलधारा, **पुण्यभूमि** – भारत की पवित्र भूमि, **विगलित**– पिघली हुई, **क्रान्त** –चढ़ा हुआ, **सीमापति**– सीमा का रक्षक, **पद–दलित**– पराजित करना, **तपी**– तपस्वी, **कराल** – भयानक, **सुत**– बच्चे, सन्तान, **चतुर्दिक्** –चारों तरफ, **विविध व्याल –** विभिन्न प्रकार के साँप अर्थात् समस्याएँ, **मणियाँ** – कीमती या मूल्यवान, **वैभव**– ऐश्वर्य, सम्मान, **अशेष**– जो कभी समाप्त न हो, **द्रुपदा**– द्रौपदी, **चित्तौर**– चितौड़, **ज्वाल–वसंत** – जौहर की घटना, **सिकताकण**– बालू के कण, **हिमपति** – हिमालय, **अवध –** राम की अयोध्या, **वृंदा**– कृष्ण का वृंदावन, **घनश्याम**– कृष्ण, **बलधाम**– बलशाली, **निधियाँ** – खजाना, **भग्नावशेष**– टूटे–फूटे अवशेष, **लिच्छवी**–शान – लिच्छवी गणराज्य के गौरव, **गण्डकी**– मिथिला में बहनेवाली एक नदी, **ध्वंस–राग**– विनाश का राग, **अम्बुधि–अन्तस्तल –** समुद्र के भीतर, **प्राची**– पूरब दिशा, **स्वर्ण–युग–अग्नि ज्वाल**– स्वर्णिम युग के आने की चमक दिखाई दे रही है, **सिंहनाद**– सिंह की तरह गर्जना, **प्रलय**–नृत्य– अनियमित चीजों के विध्वंस के लिए नृत्य, **शैल–राट्** – विशाल पर्वत, **कुहा**– कुहासा, धुँधलापन, **प्रमाद**– आलस्य, **नवयुग–शंख–ध्वनि**– नया जमाना मानो शंख की ध्वनि से जगा रहा है।

सन्दर्भ और प्रसंग

'हिमालय' शीर्षक कविता रामधारी सिंह दिनकर के काव्य–संग्रह 'हुंकार' (1938) से ली गयी है। इस कविता में दिनकर ने हिमालय को सम्बोधित करके राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी कुछ बातों को व्यक्त किया है। कविता की अपील यह है कि भारत आज दुर्दशा को प्राप्त हो गया है, ऐसी स्थिति में देश की गौरवशाली परंपरा को याद करने की जरूरत है। हमारे देशवासियों ने पहले भी विपरीत परिस्थितियों में कड़ा संघर्ष किया है। इस कविता में हिमालय को भारत के गौरव का प्रतीक मानकर आह्वान किया गया है। यह आह्वान प्रत्यक्ष रूप से तो हिमालय से है, मगर आंतरिक अर्थ में देशवासियों से है।

व्याख्या

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने इस कविता की रचना पराधीन भारत के दौर में की थी। भारतवासियों के मन में आत्म–गौरव का भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने अपील से भरी हुई इस कविता की रचना की थी। कविता हिमालय को सम्बोधित है। हिमालय को पूरी कविता में भारत के गौरव के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिनकर कहते हैं कि हे मेरे नगपति! तुम दुनिया भर के पर्वतों में सबसे ऊँचे हो! तुम विशाल हो! विराटता और दिव्यता के तुम साकार रूप हो! तुम हमारे देश के लिए विराट गौरव हो!

आगे की पंक्तियों में दिनकर ने हिमालय की विशिष्टताओं को बताने के लिए कई तरह की भावनात्मक कल्पना का उपयोग किया है। ऐसे बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से वे राष्ट्रीयता की भावना को मजबूती प्रदान करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हे हिमालय! तुम पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल हो अर्थात् पौरुष के समग्र रूप की कल्पना यदि की जाए तो वह तुम्हारी तरह का ही होगा! तुम मेरी भारतमाता के मस्तक पर बर्फ के मुकुट की तरह सुशोभित हो! तुम मेरे देश के दिव्य ललाट की तरह मालूम पड़ते हो!

तुम युगों–युगों से अपराजित हो, बन्धनहीन हो, मुक्त हो और मुक्ति के प्रतीक भी हो, तुम युगों–युगों से गौरव के साथ खड़े हो, तुम महानता के शाश्वत रूप हो! आज भी तुम इस सीमाहीन आकाश में अपनी महिमा का आवरण तानते जा रहे हो! तुमसे मेरी यहीं असहमति है। दिनकर इसके बाद हिमालय से जो बातें कह रहे हैं उनका सारांश यही है कि भारत की आज की अवस्था के अनुसार तुम्हें कुछ कदम उठाने की जरूरत है। ऐसा कहकर दिनकर इस कविता में हिमालय को भारत की विशाल जनता का प्रतिनिधि बना देते हैं।

वे कहते हैं कि भारत आज पराधीन है, मगर तुमने तो अखंड समाधि ले रखी है। यह चिर–समाधि किस लिए? हे यतिवर! तुम्हारा ध्यान तो टूट ही नहीं रहा है, यह अमर ध्यान किस लिए? ऐसा लगता है तुम आज की समस्याओं का समाधान सिर उठाकर आकाश के महाशून्य में तलाश रहे हो! मगर समस्या तो तुम्हारे पदतल में फैली भारत–भूमि पर है। इस भारत–भूमि की समस्याओं से भी ज्यादा जटिल किसी समस्या का समाधान तुम महाशून्य में खोज रहे हो क्या? मगर ऐसी स्थिति दिखाई तो नहीं देती। निश्चित रूप से समस्या इस धरती पर है, आकाश में नहीं। तुम्हें देखकर लगता है कि तुम किसी गहरी उलझन में फँसे हो!

तुम मौन रहकर तपस्या में लीन रहनेवाले सन्यासी की तरह मालूम पड़ते हो। मेरा निवेदन है कि आज तुम्हें पल भर के लिए ही सही, मगर अपनी आँखें खोल देनी चाहिए। तब तुम देख पाओगे कि तुम्हारे कदमों पर पड़ा यह महान देश किन–किन मुसीबतों से ग्रस्त होकर तड़प रहा है।

तुमने इस देश को बहुत कुछ दिया है। सिंधु जैसी विशाल नदी से भारत की भूमि को सिंचित किया है। पंजाब की पाँचों नदियाँ (सतलज, झेलम, चनाब, रावी और व्यास), ब्रह्मपुत्र, गंगा–यमुना आदि की अमृतमय जलधारा को तुमने भारत को ऐसे प्रदान किया है मानो तुम्हारी करुणा पिघल

कर भारत को आशीष दे रही है। तुम युगों–युगों से भारत की सीमा पर सीमापति की तरह खड़े हो। जब भी किसी ने सीमा को पार कर आतंकित करने की कोशिश की, तब तुमने गर्जना की कि पहले मुझसे टकराओ तब इस पवित्र भूमि में प्रवेश करो!

हे तपस्वी! उसी पुण्य–भूमि पर आज भयानक संकट आ खड़ा हुआ है। तुम्हारी संतानें व्याकुल होकर तड़प रही हैं। उन्हें चारों तरफ से सर्प–रूपी अनेक कठिनाइयाँ डँस रही हैं। हमारे देश की अकूत संपत्ति लूट कर विदेश भेज दी गयी। हमारा वैभव कभी समाप्त होनेवाला नहीं था, मगर उसे भी लूट लिया गया। तुम इन सब बातों से बेखबर होकर ध्यान में लीन रहे और हमारा प्यारा देश वीरान कर दिया गया।

कितनी समस्याएँ गिनवाऊँ? अब तक न जाने स्त्री पर अत्याचार की कितनी घटनाएँ घटित हो गयीं। महाभारत में तो एक द्रौपदी के बाल खुले थे, आज न जाने ऐसी कितनी वारदातें हो चुकी हैं और हो रही हैं। न जाने कितने बच्चे–बच्चियों को अत्याचार की बलिवेदी पर मौत मिल चुकी है। चितौड़ से पूछ लो कि उसके जौहर की घटनाएँ अब हर जगह घटित हो रही हैं। हे हिमपति! मेरी बातों पर विश्वास न हो तो, बालू के कणों से बनी उस विराट भूमि से पूछो कि तुम्हारा वह गौरवशाली राजस्थान अब किस हालत में है? उसी राजस्थान के उदयपुर में महाराणा प्रताप हुए थे, जिन्होंने जंगल में जीवन बिताना मंजूर किया मगर अपनी स्वतंत्रता के दीपक को बुझने नहीं दिया! जरा पूछना ऐसे बलवान अब कहाँ हैं?

तुम दूसरी जगहों का हाल–चाल भी पूछ सकते हो! कोई फर्क नहीं मिलेगा। सबकी दुर्दशा समान है। तुम अयोध्या से पूछो कि तुम्हारे राम कहाँ चले गए? वृन्दावन से पूछो कि कृष्ण कहाँ चले गए? हे मगध! मेरे प्रियदर्शी अशोक और महान सम्राट चन्द्रगुप्त कहाँ चले गए? क्या इस गौरवशाली अतीत की कोई निशानी आज मौजूद है? नहीं। आज केवल हताशा है।

तुम्हारे पैरों के नजदीक मिथिला की भूमि है। आज वह सुकुमारिणी एक भिखारिणी की तरह लग रही है। उसका हाल–चाल पूछो कि उसने अपनी अनंत निधियाँ कहाँ खो दी हैं? जवाब तो सबका यही है कि इस दरिद्रता का कारण अंग्रेजों का साम्राज्य है। पूरा भारत हिंसा और दमन से पटा हुआ है। हे कपिलवस्तु! तुम्हीं बताओ कि गौतम बुद्ध के मंगलमय उपदेश आज कहाँ चले गए? एक समय था कि उनके उपदेश तिब्बत, ईरान, जापान, चीन इत्यादि देशों तक प्रसारित हो गए थे। भारत से चले हुए ये उपदेश आज भारत में ही सुनाई नहीं पड़ रहे हैं। बुद्ध ने शांति के उपदेश दिए थे, मगर आज भारत में ही उसकी कमी हो गयी है। चारों तरफ अशांति का साम्राज्य फैला हुआ है। एक जमाना था कि वैशाली में लिच्छवियों का लोकतान्त्रिक गणराज्य था। मगर आज सब धूल–धूसरित हो चुका है। अब तो हमारा पुराना साहित्य भी देखने–सुनने को नहीं मिलता है। जिस गण्डकी नदी के किनारे विद्यापति के गीतों की धूम मची रहती थी, वहाँ आज उदासी छायी हुई है।

यह ठीक है कि तुम तक ये बातें अभी नहीं पहुँची हैं। मगर यह देश तरुणाई की अँगड़ाई ले रहा है। इस प्राचीन देश के भीतर से नई चेतना जन्म ले रही है। इस तरुण देश से तुम संवाद स्थापित करो! इनकी बातें सुनो कि ये तुम से क्या चाहते हैं। नई चेतना से युक्त इस देश से पूछो कि विध्वंस की यह कैसी ध्वनि सुनाई पड़ रही है? ऐसा लगता है कि समुद्र के भीतर कोई आग सुलग रही है। लगता है कि पूरा देश भीतर–भीतर क्रांति की तैयारी कर रहा है। पूरब दिशा में निकलता हुआ सूरज मानो स्वर्ण–युग की अग्नि लेकर प्रज्ज्वलित हो रहा है। ऐसे समय में हे मेरे नगपति! तुम अपनी तपस्या छोड़कर जाग जाओ! तुम अपने विराट रूप के साथ सिंहनाद करो! तुमसे अनुरोध है कि आज युद्धिष्ठिर को स्वर्गारोहण करने दो, उन्हें मत रोको! आज उनकी जरूरत नहीं है। आज हमें अर्जुन और भीम की जरूरत है। स्वर्गारोहण की घटना के क्रम में अर्जुन और भीम अपने गांडीव और गदा के साथ तुम्हारी खाइयों में गिर गए थे। आज उन्हें लौटा दो! अर्जुन को गांडीव के साथ और भीम को गदा के साथ! आज की कठिनाइयों से जूझने के लिए अर्जुन–भीम

की जरूरत है, युद्धिष्ठिर की नहीं! तुम्हारे कैलाश पर्वत पर शंकर का वास है। उनसे कहो कि एक बार प्रलय–नृत्य कर दें! जो कुछ बुरा उसका विध्वंस हो जाए और एक बार फिर से पूरे भारत में 'हर–हर–बम' का जयघोष सुनाई पड़ जाए!

अंतिम बात यह कि तुम ध्यान छोड़ो! एक बार अँगड़ाई लो! तुम्हारी हल्की अँगड़ाई से भी यह पूरी धरती हिल जाएगी! आज तक तुम्हारी आवाज किसी ने नहीं सुनी, हमारा अनुरोध है कि अपने विराट स्वर से अनुगूँज पैदा कर दो! हे पर्वतेश्वर! तुम्हारे हुंकार से धुंधलका फट जाएगा और प्रमाद दूर हो जाएगा! तुम्हारी एक छोटी–सी कोशिश भारत में नई चेतना का संचार कर देगी और विरोधियों के हौसले पस्त हो जाएँगे! तुम अपने मौन को त्याग दो! सिंहनाद करो! हे तपस्वी! आज तपस्या करने का समय नहीं है। नए युग की शंख–ध्वनि जगा रही है। हे मेरे विशाल! तुम जाग जाओ!

काव्य सौष्ठव

- हिमालय को भारत की विराटता और वीरता का प्रतीक बताया गया है।
- हिमालय को सम्बोधित यह कविता भारत के आख्यान और इतिहास से गर्व के प्रसंगों को प्रस्तुत कर रही है।
- स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह कविता देशवासियों से पुनर्जागरण की अपील करती है।
- इस कविता का निर्माण 16 मात्राओं की पंक्तियों से हुआ है।

विशेष

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय केवल अहिंसा और सत्याग्रह से ही काम नहीं लिया गया था। ऐसे कई आन्दोलन हुए थे जहाँ हिंसात्मक संघर्ष का सहारा लिया गया था। क्रांतिकारी विचारों में विश्वास रखनेवाले आन्दोलनकारियों के प्रयासों का अपना महत्त्व है। यह कविता इसी प्रकार के संघर्षों का पक्ष ले रही है।

चार

भगवान के डाकिए

पक्षी और बादल,

ये भगवान के डाकिए हैं,

जो एक महादेश से

दूसरे महादेश को जाते हैं।

हम तो समझ नहीं पाते हैं

मगर उनकी लाई चिट्ठियाँ

पेड़, पौधे, पानी और पहाड़

बाँचते हैं।

हम तो केवल यह आँकते हैं

कि एक देश की धरती

दूसरे देश को सुगंध भेजती है।

और वह सौरभ हवा में तैरते हुए

पक्षियों की पाँखों पर तिरता है।

और एक देश का भाप

दूसरे देश में पानी

बनकर गिरता है।

('हारे को हरिनाम'(1970)

सन्दर्भ और प्रसंग

देश की राजनीतिक सीमाओं से परे जाकर प्रकृति की अखंडता को समझने की एक कोशिश इस कविता में की गई है।

व्याख्या

'भगवान के डाकिए' शीर्षक कविता में रामधारी सिंह दिनकर ने वैश्विक संस्कृति को देश की सीमाओं से परे बताया है। देश की सीमाएँ राजनीतिक होती हैं। मगर यह धरती इन सीमाओं के आधार पर नहीं बनी है। धरती का अपना प्राकृतिक स्वरूप अखंड है। इसके प्रमाण प्रकृति में दिखाई पड़ते हैं।

दिनकर कहते हैं कि पक्षी और बादल भगवान के डाकिए की तरह हैं। ये दोनों मानो भगवान के संदेश लेकर सर्वत्र विचरण करते हैं। वे एक महादेश से दूसरे महादेश में चले जाते हैं। अपने आने–जाने के क्रम में न जाने वे कितनी सारी चीजें स्थान्तरित करते रहते हैं। इन पर किसी देश का कानून लागू नहीं हो पाता!

ये दोनों जिस तरह के संदेश लेकर आते हैं, उन्हें हम मनुष्य समझ नहीं पाते। इनकी लायी हुई चिट्ठियों को हम पढ़ नहीं पाते। मगर ऐसा नहीं है कि प्रकृति में कोई ऐसा न हो जो इनकी चिट्ठियों को न पढ़ सके! कवि का ख्याल है कि पेड़, पौधे, पानी और पहाड़ इन चिट्ठियों को पढ़ लेते हैं। उनमें इतनी क्षमता है कि वे पक्षी और बादल के द्वारा लाई गई भगवान की चिट्ठियों को पढ़ सकें!

मगर इन बातों पर प्रायः हम गौर नहीं करते! हम तो केवल यह समझते हैं कि हमारी राजनीतिक सीमाएँ ही सत्य हैं और प्रकृति का अखंड स्वरूप इसके आगे झूठा बना दिया जाता है। हम मनुष्य केवल इतना समझ पाते हैं कि एक देश की धरती से जो सुगंध उठती है, वह दूसरे देश को पहुँच जाती है। यह सुगंध हवा में तैरते हुए पक्षियों के पंखों पर सवार हो जाती है। इसी तरह एक देश से उठी हुई भाप पानी बनकर दूसरे देश में बरस जाती है।

कठिन शब्द
बाँचते–पढ़कर सुनाना, **आँकते**– मूल्यांकन करना

मगर प्रकृति का अखंड स्वरूप इससे विराट है। इस स्वरूप को समझने के लिए प्रकृति के अन्य संदेशों को भी समझना होगा।

काव्य सौष्ठव

- प्रकृति सबसे बड़ा सत्य है।
- देश की सरहदें मनुष्य की बनाई हुई हैं, जिनमें बँधकर रहने की बेबसी मनुष्य की है प्रकृति की नहीं।
- प्रकृति के संदेशों को समझकर ही इस दुनिया को खुशहाल बनाया जा सकता है।
- यह छंदमुक्त कविता है, हालाँकि कुछ पंक्तियों में तुकबंदी और मात्राओं की समानता भी मौजूद है। फिर भी पूरी कविता में छन्द का अनुशासन नहीं है।

विशेष

देश की राजनीतिक सीमाओं से बड़ा सच प्रकृति का अखंड स्वरूप है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में कवि का क्या सन्देश है?
   .....
   .....
   .....
2. 'शक्ति और क्षमा' कविता में युद्ध का विरोध है या समर्थन?
   .....
   .....
   .....
3. हिमालय' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता आन्दोलन के किस रूप पर बात की गयी है?
   .....
   .....
   .....
4. 'भगवान के डाकिए' कविता में किस तरह की वैचारिकी प्रस्तुत की गयी है?
   .....
   .....
   .....

बोध प्रश्न –2

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

i. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
   क) रेणुका ख) सामधेनी ग) हुंकार घ) कुरुक्षेत्र

ii. शक्ति और क्षमा' किस पुस्तक का काव्यांश है?
क) कुरुक्षेत्र ख) रश्मिरथी ग) उर्वशी घ) परशुराम की प्रतीक्षा

iii. 'शक्ति और क्षमा' शीर्षक कविता में किन दो पात्रों के बीच संवाद हो रहा है ?
क) विदुर–युद्धिष्ठिर ख) भीष्म–युद्धिष्ठिर ग) द्रोणाचार्य–युद्धिष्ठिर
घ) कृपाचार्य–युद्धिष्ठिर

iv. 'मेरी जननी के हिम–किरीट' में 'हिम–किरीट' किसे कहा गया है?
क) कैलाश ख) अर्जुन–भीम ग) चन्द्रगुप्त घ) हिमालय

v. 'हिमालय' कविता में प्रलय–नृत्य करने की अपील किससे की गई है?
क) देशवासी ख) हिमालय ग) शंकर घ) कैलाश

vi. 'हुंकार' काव्य–संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था ?
क) 1953 ख) 1938 ग) 1957 घ) 1970

vii. 'हिमालय' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है ?
क) 21 ख) 24 ग) 18 घ) 16

viii. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है?
क) 23 ख) 21 ग) 17 घ) 28

ix. दिनकर का जन्म कब हुआ था?
क) 1909 ख) 1910 ग) 1908 घ) 1912

x. दिनकर की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1968 ख) 1985 ग) 1964 घ) 1974

xi. दिनकर को किस पुस्तक के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था?
क) कुरुक्षेत्र ख) रश्मिरथी ग) संस्कृति के चार अध्याय घ) उर्वशी

15.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में चाँद और कवि की बातचीत दिखाई गयी है। चाँद मनुष्य के पुराने रूपों की चर्चा कर रहा है। मगर कवि बताता है कि आज का मनुष्य अब वैसा नहीं रह गया है। उसके पास विज्ञान की शक्तियाँ आ गयी हैं। इनके सहारे वह अपने जीवन को सुविधाजनक बना रहा है। मगर इसी के साथ वह प्रकृति की बनावट में विध्वंसकारी हस्तक्षेप कर रहा है।
2. 'शक्ति और क्षमा' कविता में युद्ध का समर्थन नहीं है। यह कविता 'कुरुक्षेत्र' पुस्तक का एक अंश है। इस किताब में युद्ध की परिस्थितियों और परिणामों की चर्चा महाभारत की कथा के माध्यम से की गयी है। मगर इस अंश को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि दिनकर युद्ध का पक्ष ले रहे हैं। सावधानी से अर्थ लगाने पर हम पाते हैं कि इस कविता में केवल इतना कहा गया है कि युद्ध के माहौल में शक्ति की महत्ता होती है। हमारी क्षमाशीलता का सम्मान भी तभी होता है जब हम ताकतवर होते हैं। इस कविता का मूल सन्देश यही है कि शक्तिशाली होकर क्षमाशील और सहनशील बनना चाहिए, अन्यथा हमारे इस कदम का सम्मान नहीं हो पाता है।
3. 'हिमालय' शीर्षक कविता में भारतीय आख्यान और इतिहास की वीरता से जुड़े प्रसंगों को याद किया गया है। 'हुंकार' (1938) में संगृहीत इस कविता का सन्दर्भ स्वतंत्रता आन्दोलन है। अहिंसा और सत्याग्रह के रास्ते के अलावा क्रांतिकारी मार्ग को अपनाने वाले स्वतंत्रता

सेनानी भी सक्रिय थे। इस धारा का अपना महत्त्व है। भारतीय जनमानस का एक बड़ा हिस्सा इस रास्ते पर चलनेवालों को सम्मान की दृष्टि से देखता था। इन लोगों की शहादत को नायकत्व का दर्जा प्रदान किया जाता था। दिनकर ने इसी धारा की भावनाओं को इस कविता में सांस्कृतिक शब्दावली के द्वारा व्यक्त किया है।

4. 'भगवान के डाकिए' कविता में प्रकृति के अखंड रूप को स्थायी और सत्य माना गया है। देश की बनाई गयी सीमाएँ मनुष्य–निर्मित हैं। इन सबके पीछे राजनीति की भूमिका होती है। ये सरहदें बनती–बिगड़ती रही हैं। मगर प्रकृति की सत्ता हमेशा कायम रही है। पक्षी और बादल के माध्यम से यह बात कही गयी है कि भगवान या प्रकृति की इस सत्ता को पहचानो! देश की सीमाएँ प्रकृति की अखंडता को नहीं बाँध सकती हैं। प्रकृति हर तरह से स्वतंत्र है।

बोध प्रश्न –2

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

i. ख
ii. क
iii. ख
iv. घ
v. ग
vi. ख
vii. घ
viii. क
ix. ग
x. घ
xi. घ

15.4 उपयोगी पुस्तकें

1. दिनकर रचनावली – सम्पादक –नन्दकिशोर नवल, तरुण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. युगचारण दिनकर – सावित्री सिन्हा, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. दिनकर – सं.– सावित्री सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली